शून्यात पूर्णमुदच्यते

हिन्दी ADDA

पराग मांदले

शून्यात पूर्णमुदच्यते

माया नगरी के विशाल राजमहल के स्वर्णमंडित शिखर के ठीक ऊपर ठिठके महाकाय कृष्ण मेघ ने उदास दृष्टि से उन छोटे-बड़े मेघ-पुंजों की ओर देखा जो एक-दूजे से अठखेलियाँ करते, एक-दूजे से आगे निकलने की होड़ करते दौड़े चले जा रहे थे। सद्यप्रसूता नारी के पयोधरों के समान जीवन-रस से भरपूर थे वे मेघ-पुंज। अपने-अपने निर्धारित स्थलों पर इस जीवन-रस को भर-भर हाथों उलीचते हुए

https://www.hindiadda.com/shunyant-pur%e1%b9%87amudacyate/

कितना आनंद पाएँगे ये। और कैसी धन्यता का, कितने संतोष का अनुभव करेंगे ये मेघ। उस समय यही सोच रहा था वह महाकाय कृष्ण मेघ।

ऐसा नहीं था कि उसमें नहीं था वह रस, जो सारे संसार को जीवन का वरदान देता है। हिंद महासागर के खौलते जल से उठे वाष्प-गुच्छों से जब आकार लिया था उसने, तब इतना भरपूर था उसमें वह जीवन-रस कि चलते हुए हर पग पर छलक-छलकने को आतुर हो उठता था। पूरे दिन लिए किसी गर्भवती की तरह सँभल-सँभलकर आगे बढ़ता था वह। एक अजीब-सी उत्तेजना भरी रहती थी उसके भीतर। सद्यप्राप्त यौवन की पुलक से भरी किशोरी के हृदय को व्यापने वाली उत्तेजना। उस समय विधाता ने उसके लिए भी निर्धारित कर दिया था एक स्थल, जहाँ उसे अपने हृदय में संचित संपूर्ण जीवन-रस उलीचकर मोक्ष को पाना था।

'ऐसे जीवन का क्या अर्थ है विधाता, जिसमें एक लंबी यात्रा हो और यात्रा के अंत में अपने सर्वस्व का न्यौछावर हो?' पूछा था उसने।

स्नेह से परिपूर्ण करुण दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए बोले थे विधाता, 'यह यात्रा तुम्हें विविध अनुभवों के साथ एक ऐसी जीवन दृष्टि देगी, जिससे तुम जीवन के सच्चे अर्थ और उद्देश्य को समझ सकोगे। विविध अनुभवों से संपन्न होकर इस यात्रा के अंत तक तुम भली-भाँति इस बात को जान लोगे कि वास्तव में शून्य हो जाना ही पूर्ण हो जाना है। और सर्वस्व के न्यौछावर के बिना भला शून्य हो पाना कैसे संभव होगा?'

वह नहीं समझ पाया था ठीक से विधाता की गूढ़ बातें। वह नहीं बैठा पाया था शून्यता और पूर्णता के दो सर्वथा विपरीत ध्रुवों के मध्य तालमेल। मगर फिर भी पुलक से भरा हुआ था वह। किसी ऐसी युवती के हृदय की पुलक थी वह जिसका शीघ्र विवाह होने वाला हो। अपने होने वाले प्रियतम को स्मरण करते हुए हृदय में उठने वाली पुलक और उसके साथ गुजारे जाने वाले मधुर पलों की कल्पना से उपजी पुलक।

कैसा होगा वह स्थल जिसके कण-कण को सिंचित करेगा वह अपने रस से? कैसी होगी वह भूमि और कैसे होंगे वहाँ निवास करने वाले लोग, पशु-पक्षी? किस तरह उसके हृदय का प्रेम भूमि को ओढ़ाएगा एक हरित आँचल? किस तरह छलछला उठेंगे कुएँ, तालाब, झील, बावड़ियाँ? किस तरह लहलहाकर अपनी सीमाओं का अतिक्रमण करती दौड़ पड़ेंगी नदियाँ? किस तरह तमाम नर-नारी-बच्चे, पशु-पक्षी

गा उठेंगे जीवन का नया गीत? उसका जीवन-रस किस तरह बन जाएगा सबका जीवन-गान? अपना सर्वस्व उलीच कर, रिक्त होकर वह उस संपूर्ण परिदृश्य का ही एक हिस्सा हो जाएगा। क्या यही है शून्य होकर पूर्ण हो जाना, जैसा विधाता कहते हैं? वह सोचता।

किस तरह जुड़ी हुई हैं एक-दूसरे से सारी चीजें। बड़ा अद्‌भुत लगता महाकाय कृष्ण मेघ को यह जुड़ाव। कैसा विचित्र व्यापार है यह? उसके भीतर प्रश्न उठा था।

'लीला है यह परमेश्वर की वत्स!' विधाता के पास रटा-रटाया उत्तर था।

परमेश्वर का यह लीला-वैचित्र्य, यह क्रीड़ा-कौतुक अद्‌भुत ही नहीं रोचक भी था। किंतु इस सारी क्रीड़ा का, इस लीला का उद्‌देश्य क्या है? जब विधाता से किया था उसने यह प्रश्न तो आश्चर्य से उसे देखते रह गए थे विधाता। कई क्षणों तक मौन रहे थे वे। क्या उसने कोई अनुचित प्रश्न कर दिया है? क्या उसने कोई ऐसी जिज्ञासा व्यक्त कर दी है, जिसका उसे अधिकार ही न था? अभी वह इस संकोच से उबर भी नहीं पाया था कि अपना मौन तोड़ा विधाता ने।

अपनी उसी सुपरिचित करुणा के साथ उसे निहारते हुए कहा उन्होंने, 'तुम्हारी योनि में इस जिज्ञासा का उठना आश्चर्यकारक है वत्स। परंतु चाहकर भी इस क्षण तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता मैं। ज्ञान की प्राप्ति और सत्य का साक्षात्कार एक लंबी किंतु सचेत यात्रा की पूर्णाहुति होती है। फिर कुछ जिज्ञासाओं का शमन उत्तरों से नहीं, अनुभवों से ही करना उचित और श्रेयस्कर होता है। किंतु हाँ, इतना आश्वासन मैं तुम्हें देता हूँ कि जिस दिन तुम यह जान लोगे कि शून्य होकर पूर्ण होने का क्या अर्थ है, उस दिन तुम्हारी शेष सभी जिज्ञासाओं का समाधान भी हो जाएगा।'

न उसे जिज्ञासाओं का भय था और न उनके शमन की शीघ्रता। उत्सुक-उल्लसित हृदय लिए मंद गति से अपने गंतव्य की ओर रवाना हो गया वह महाकाय कृष्ण मेघ। कितने नगर, ग्राम, वन-उपवन, पहाड़, घाटियां पार की उसने, इसकी गणना भला कौन करता और क्यों करता? धरा पर बिखरे जीवन के न जाने कितने रंगों के दर्शन किए उसने इस बीच। जाने कितने सूर्योदय और सूर्यास्त देखे। रात्रि में नगरों के ऊपर से गुजरते हुए नीचे दीप-मालाओं के विस्तृत जाल को देखकर कई बार वह इस भ्रम में पड़ जाता कि तारों भरा नभ नीचे भूमि पर आ गया है अथवा उसका प्रतिबिंब नीचे पसरी जल-राशि पर पड़ रहा है। यद्‌यपि कुछ ध्यान से देखने पर ये

दोनों ही भ्रम दूर हो जाते। रात्रि में नगरों के मार्गों और भवनों में जगमगाती दीप-मालाएँ यूँ प्रतीत होतीं मानो तारों जड़ा वस्त्र पहना हो धरा ने कोई।

सदैव तो नहीं किंतु कभी-कभी उसका मन करता कि अपने कोष में से एक अँजुरी भर जीवन-रस उलीच दे कहीं वह। वर्तमान में भविष्य के अनुभव की चाह यह वर्ज्य चाह उसके भीतर यूँ व्याप लेती जैसे अगर की सुगंध क्षणार्ध में व्याप लेती है किसी कक्ष को। मगर तत्क्षण उसके भीतर विधाता के चेतावनी भरे स्वर गूँज उठते जो उन्होंने यात्रा के प्रारंभ में ही कहे थे उससे।

'जो लक्ष्य है तुम्हारा, उस तक पहुँचे बिना एक बूँद भी नहीं गँवानी है तुम्हें। जिस भू-क्षेत्र के लिए निर्धारित है तुम्हारी जलराशि, उसमें एक बूँद का अंतर होना, मुझ विधाता की कार्य-योजना में हस्तक्षेप करना होगा। यह एक ऐसा अपराध होगा जिसके लिए कोई क्षमा नहीं मिल सकेगी तुम्हें।'

'और कभी हृदय में ऐसी कोई कामना उभर आए तो?' विधाता की चेतावनी के तत्क्षण बाद उसने यह प्रश्न तो कर लिया था किंतु उसे यह अनुभव होने में एक क्षण का भी विलंब न हुआ था कि उसका यह प्रश्न करना उचित नहीं था।

'अपनी किसी कामना के चलते विधाता की योजना में हस्तक्षेप करने के स्थान पर विधाता की योजना को ही अपनी कामना बना लेना उचित होगा तुम्हारे लिए मेघ। तुम केवल निमित्त मात्र हो, यंत्र हो मुझ विधाता के। मेरी आज्ञा का अक्षरशः पालन करना ही तुम्हारा परम कर्तव्य है। तुम्हारी यह योनि केवल कर्तव्य-पालन हेतु है, इसका कभी विस्मरण न हो, यह ध्यान रहे।' तब कहा था विधाता ने।

'चौंसठ लाख योनियों में भ्रमण करता है जीव, जब एक बार वह उस परम शिव से विलग होता है।' माया नगरी से कुछ ही दूर घने वन के मध्य स्थित एक आश्रम के बाहर एक संन्यासी अपने शिष्यों को उपदेश दे रहे थे। 'इनमें से केवल एक मनुष्य योनि ही ऐसी होती है जिसमें जीव को विचारपूर्वक कर्म करने का अधिकार मिला है। यह मनुष्य की इच्छा है कि वह अपने इस अधिकार का सदुपयोग करके परम शिव से अपनी दूरी को पूर्णतः समाप्त करके पुनः उनसे एकाकार हो जाता है या अविचारपूर्वक कर्म करते हुए उनसे अपनी दूरी को और बढ़ा लेता है।'

यह तो ठीक है कि विचारपूर्वक कर्म करने का अधिकार केवल मनुष्य को ही मिला हो, किंतु अन्य योनियाँ क्या उस परम शिव से जीव की दूरी को घटाने में सहायक नहीं होती हैं? उसने सोचा। क्या संन्यासी से करे वह यह प्रश्न? एक क्षण के लिए

उसने सोचा। फिर न जाने क्या सोच कर यह तय किया कि जब भी वह कभी पुनः विधाता से मिलेगा तो उनसे यह प्रश्न अवश्य करेगा।

आगे का सारा प्रदेश सूखा हुआ था। सूर्य देवता का ताप बड़ी प्रखरता से उस भू-प्रदेश को झुलसा रहा था। पवन के झोंकों पर सवार होकर आ रही लू-थपेड़ों की आँच उसे अपनी देह को भी झुलसाती अनुभव हो रही थी। ऐसा लग रहा था मानो सूर्यदेव ने अपनी किरणों की कटार से उस भू-प्रदेश की हरितिमा को काटकर उसे धूसर रंग में परिवर्तित कर दिया हो। सारे वृक्ष झुलसे हुए इस तरह सूखे और संकुचित दिखायी देते थे, मानो किसी ने बीच बाजार उनके शरीर से पत्तों का आवरण खींचकर उन्हें निर्वस्त्र कर दिया हो। खेतों में फसल के स्थान पर दूर-दूर तक धूल के गुबार उड़ रहे थे। नदी-नालों से जल और जीवन के चिह्न लुप्त हो चुके थे। तालाबों में पानी के स्थान पर कहीं-कहीं विभक्त परिवार-सा गाढ़ा दलदल सिमट कर बिखरा हुआ था।

इंद्र देवता के शाप से त्रस्त उस भूमि का प्रत्येक प्राणी जल के अभाव में निचोड़े हुए वस्त्र-सा शुष्क और तेजहीन दिखायी दे रहा था। स्थान-स्थान पर प्यास के चलते दम तोड़ चुके पशु-पक्षियों के शव फैले हुए थे। पीड़ा मानो स्थायी भाव बन चुकी थी मनुष्यों के मुख का। नयनों के पास बहाने के लिए अश्रुओं का भी अभाव हो गया था। धरती के साथ-साथ उनके नयनों का पानी भी सूख गया था। महाकाय कृष्ण मेघ ने अपना ध्यान आशा भरी, प्यास भरी दृष्टि से आसमान को तकते लोगों की आँखों पर ही केंद्रित कर लिया था। यह सोचकर कि संभवतः किसी की आँखों में बची रह गई हो कोई बूँद। कोई नयन दिख जाए उसे भीगा हुआ।

कुछ दूसरी इसी तरह पार करने के पश्चात एक जोड़ी आँखों ने अनायास बाँध लिया उसे। विशाल पर्वत तो उस पूरे प्रदेश में कहीं नहीं थे। एक छोटी-सी पहाड़ी थी वह। जिस पर एक कोने में बनी हुई छोटी-सी झोपड़ी के चारों ओर कुछ दूर तक एक खेत अलसाया-सा पसरा हुआ था। उस प्रदेश के अन्य खेतों की तरह ही सूखा, उदास और बेचैन। झोपड़ी के बाहर एक बड़ी-सी शिला थी, जिस पर बैठी हुई थी एक युवती। बीस-बाईस वर्ष की। उदास नयनों से वह आसमान को ताक रही थी जब उसकी दृष्टि महाकाय कृष्ण मेघ पर स्थिर हुई। उस समय उसकी दृष्टि में क्या कौंधा था - आशा, उमंग, प्यास या विश्वास? तय नहीं कर पाया कृष्ण मेघ, किंतु उस दृष्टि के सम्मोहन में बँधकर रह गया। क्या है इस दृष्टि में? क्या है? एक प्रश्न निरंतर मथने लगा उसके मन-मस्तिष्क को। क्या है इस दृष्टि में, यह जानने के लिए उस दृष्टि से

बँधा हुआ वह कुछ नीचे उतर आया, एक पल को भी उन आँखों पर से अपनी दृष्टि हटाए बिना।

गौर वर्ण की होगी वह युवती, जिसका रंग कुछ कुम्हलाया हुआ था उस समय। जल में मचलती किसी मछली-से चंचल उसके विशाल नयनों के अलावा उसकी उन्नत नासिका भी ध्यान आकर्षित करती थी। मध्यम कद की उस युवती के वस्त्र यद्यपि पुराने थे, किंतु उन्हें पहनने का सलीका बताता था कि दृष्ट्य स्थितियों के विपरीत उसमें एक अलग-सा आभिजात्य था।

'क्यों ठहरे हो तुम यहाँ?' उस युवती ने पूछा।

इस बार एक नया प्रश्न मेघ के भीतर उठा - क्या है इस स्वर में? सरसता या कठोरता? क्या हो गया है उसकी समझ और बुद्धि को? यह प्रश्न भी पीछे-पीछे चला आया। क्या कोई स्वर ऐसा हो सकता है कि उसकी सरसता या कठोरता का भेद न समझा जा सके? कहीं ऐसा तो नहीं कि उस युवती की दृष्टि के सम्मोहन ने उसकी सामान्य समझ को भी हर लिया है? अब प्रश्न लगातार उसके भीतर उठ रहे थे। बुलबुलों की तरह, एक के पश्चात एक।

'प्रश्न मैंने तुमसे किया है मेघ, और तुम हो कि उत्तर देने के स्थान पर स्वयं से ही निरंतर प्रश्न किए जा रहो हो।' युवती बोली।

क्या है इस प्रश्न के पीछे - क्रोध या ठिठोली? फिर एक प्रश्न उभरा उसके भीतर, किंतु ठीक इसके पीछे उभरा एक भाव - जादूगरनी है यह युवती। इसे कैसे पता चल गया कि मेरे भीतर प्रश्नों का तूफान आया हुआ है?

'अपने चेहरे पर मन का हाल लिखकर मुझे जादूगरनी समझते हो मेघ? चेहरे पर लिखा पढ़ना अभ्यास का परिणाम है, जादू का नहीं।' इस बार निश्चित रूप से खिलखिलाई थी वह युवती। इस बार महाकाय कृष्ण मेघ के भीतर कोई प्रश्न नहीं उठा था।

'ठहरना मेरा स्वभाव नहीं है कन्या...।' बिना युवती के चेहरे से दृष्टि हटाए कहा मेघ ने, '...किंतु तुम्हीं ने अपनी दृष्टि से बाँधकर रोक लिया मुझे।'

'परिहास करते हो मुझसे?' युवती ने पूछा।

क्या है इस स्वर में, कातरता या शिकायत? पुनः एक प्रश्न उठ आया कृष्ण मेघ के भीतर। किंतु प्रश्न को तत्काल परे हटाकर उसने कहा, 'मैं भला क्यों परिहास करूँगा तुमसे?'

'वह मैं क्या जानूँ? किंतु यदि सचमुच मेरी दृष्टि में इतनी शक्ति है कि वह तुम्हें ठहरने को विवश कर दे तो क्या बरसने को विवश नहीं कर सकती?' इस बार निश्चय ही गंभीर था युवती का चेहरा, जिस पर एक उत्सुकता नत्थी की हुई थी, एक क्षीण आस के साथ। जिसे वह स्पष्ट रूप से देख पा रहा था।

तत्क्षण कोई उत्तर नहीं सूझा महाकाय कृष्ण मेघ को, इसलिए अनायास पूछ बैठा वह, 'नाम क्या है तुम्हारा?'

'वर्षा।' युवती के चेहरे पर लज्जा के कुछ भाव उभरे।

'हे ईश्वर!' एक गहरी ठंडी साँस ली मेघ ने और मुस्करा दिया।

'मुस्कराते क्यों हो?' लज्जा का भाव अब भी ठहरा हुआ था युवती के चेहरे पर।

'तुम तो स्वयं वर्षा हो। फिर मुझसे जल बरसाने की अपेक्षा क्यों करती हो?' शरारत से चमक उठी थीं महाकाय कृष्ण मेघ की आँखें।

'क्या तुम नहीं जानते कि वर्षा मेघों पर आश्रित होती है?'

'किंतु तुम तो आश्रित नहीं हो मुझे पर।'

'काश कि हो सकती।' आह-सी भरी युवती ने।

'काश कि हो पाती।' प्रत्युत्तर में स्वयं मेघ ने भी एक गहरी आह भरी। '...किंतु मैं विधाता की आज्ञा से, उनकी इच्छा से बँधा हुआ हूँ वर्षा।'

'और मैं दुर्भाग्य की डोर से बँधी हुई हूँ।' छलछला आई थीं युवती की आँखें।

अंततः पानी से भरी आँखें दिख ही गईं उसे। मेघ ने सोचा। कहाँ छुपा रखा था इसने इतना पानी?

'यह पानी नहीं, विवशता है मेरे मेघ, जो इन आँखों से बरसने के उपरांत भी कायम रहेगी।'

'वह क्यों भला?' इस बार मेघ का चेहरा ही प्रश्न बन गया था।

'यह खेत देखते हो?' सामने की ओर संकेत करते हुए कहा युवती ने, '...मेरे वृद्ध पिता विगत तीन वर्षों से नियमपूर्वक इन खेतों को जोत रहे थे, इस आशा में कि वर्षा होगी और इन खेतों में चारों ओर हरियाली छाएगी। इन तीन वर्षों में उनकी और मेरी आँखों से अश्रु तो ढेरों बहे, किंतु वर्षा की एक बूँद भी नहीं बरसी। इस बार भी जोता उन्होंने खेत, किंतु इस बार आँखों के अश्रु, आशा और साहस - तीनों दम तोड़ गए हैं। इस तरह टूट गए हैं मेरे पिता कि संभव है इस बार स्वयं भी बिखर जाएँ, आशाओं के समान।'

'धीरज रखो, संभव है इस बार भरपूर वर्षा हो तुम्हारे प्रदेश में।' महाकाय कृष्ण मेघ ने ढाँढ़स बंधाना चाहा।

'मुझे दिलासा की नहीं, वर्षा की आवश्यकता है मेघ।' युवती का चेहरा भावहीन था इस बार।

'किंतु यह मेरे वश में नहीं... मैंने पहले भी कहा था तुमसे।' विवशता से भरा था मेघ का स्वर।

'तो ठहरे क्यों थे यहाँ? चले जाओ इसी क्षण यहाँ से। दूर चले जाओ कहीं।' कहते हुए फूट-फूटकर रो पड़ी वर्षा। '...मेरे पिता के प्राण भी न ठहरेंगे अब अधिक समय। फिर इसी शिला पर सिर पटक-पटक कर दम तोड़ दूँगी मैं भी। किंतु तुम्हें इस सबसे क्या लेना? चले जाओ तुम यहाँ से मेघ, इसी क्षण चले जाओ।'

युवती ने फिर एक बार भी मेघ की ओर नहीं देखा। अपनी आँखों से घनघोर अश्रु बहाती वह झोपड़ी के भीतर चली गई।

वहीं ठिठका खड़ा रहा कृष्ण मेघ। यह कैसा बंधन है जो उसे आगे बढ़ने से रोक रहा है? क्यों उसका जी चाह रहा है कि वह अभी धरा पर उतर कर अपने हाथों से पोंछ दे अश्रु वर्षा के और उसे अपने हृदय से लगा ले। वर्षा... ओह वर्षा... वर्षा का तो सदा से निवास रहा है उसके हृदय में। फिर... फिर क्यों वह विमुख होना चाहता है उससे? वर्षा ही एक अलग रूप में उसे भरती है, फिर विलग होकर रिक्त करती है और अंततः मुक्त करती है। क्या वर्षा से भागना उस मुक्ति से भागना नहीं है? क्यों उद्वेलित है उसका हृदय इस तरह? क्यों नहीं गूँज रहा है इस बार उसके भीतर विधाता का चेतावनी भरा स्वर? क्या उसकी इच्छा में विधाता की इच्छा भी

सम्मिलित है? वह अपने हृदय में क्यों प्रेम के अथाह सागर को हिलोरे लेता अनुभव कर रहा है? क्यों रिक्त हो जाना चाहता है वह वर्षा के लिए, वर्षा के माध्यम से? क्या कहा था विधाता ने - रिक्त हो जाना, शून्य हो जाना ही पूर्ण हो जाना है। और यह भी कि सर्वस्व न्यौछावर किए बिना कोई शून्य नहीं होता। क्या इसी ओर संकेत किया था विधाता ने? क्या विधाता जानते थे कि उसके समक्ष आएगी ऐसी परिस्थिति? और फिर यदि इसमें विधाता की भी सहमति सम्मिलित नहीं है तो फिर क्यों उसके भीतर जागी यह कामना? क्या विधाता की इच्छा के बिना उसके भीतर इस कामना की इस तीव्रता से जागृति संभव है? क्या करे वह? क्या करना चाहिए उसे? इस प्रश्नाकुलता से विह्वल होकर टपाटप गिरने लगे उसके अश्रु। एक के बाद एक... निरंतर। और उसे पता भी नहीं चला कि किस तरह अश्रु बहाते-बहाते सींच दिया था उसने वर्षा का पूरा खेत।

अपराधी बना सिर झुकाए खड़ा था कृशकाय कृष्ण मेघ विधाता के समक्ष।

'मैं सचमुच नहीं जानता विधाता कि कैस हो गया यह सब।'

'तुम नहीं जानते? क्या नहीं जानते हो तुम? क्या तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि तुम्हारे हृदय की उत्कट अभिलाषा ने ही घनीभूत होकर धरा था यह रूप? सच कहो, क्या तुमने नहीं चाहा था वहाँ बरस कर रिक्त हो जाना?' विधाता के मुख पर क्रोध की क्षीण-सी रेखा उभर आई थी।

'कामना तो की थी मैंने विधाता, और प्रेम के वशीभूत होकर की थी वह कामना। उस प्रेम के वशीभूत होकर जो सहसा उस युवती के प्रति मेरे हृदय में उत्पन्न हो गया था। किंतु इसके पश्चात जो कुछ हुआ, वह अनायास ही हुआ। उसमें मेरा कोई प्रयास नहीं था।' अपराध-बोध था कृशकाय कृष्ण मेघ के मुख पर, किंतु उसकी आँखों में सच था।

'माया... महाठगिनी है वत्स ये माया। ठग गई तुमको। जब बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनि नहीं बच पाते हैं इस माया से तो तुम्हारी बिसात ही क्या? किंतु अपराध तो हुआ ही है तुमसे वत्स! वह चाहे जान-बूझकर हुआ हो या अनजाने में। और जब अपराध हुआ है तो उसका दंड भी तुम्हें झेलना ही होगा।'

सिर झुकाए अपने प्रेम का दंड भोगने के लिए प्रस्तुत था कृशकाय कृष्ण मेघ। कैसी अनोखी बात है, वह चाहे स्वयं विधाता का न्यायालय हो अथवा उनकी रची सृष्टि की कोई पंचायत, प्रेम करने वाले सदा दंड के ही भागी होते हैं।

'तुम्हारे लिए एक लक्ष्य निर्धारित किया था हमने, किंतु उस लक्ष्य से च्युत हुए हो तुम। इसके परिणामस्वरूप इस काया में अपना शेष जीवन तुम्हें लक्ष्यहीन होकर भटकते हुए व्यतीत करना होगा। अपने निर्धारित स्थल पर बरस कर रिक्त होना था तुम्हें, किंतु तुमने ऐसा न करके अपने अधिकार का अतिक्रमण किया, इसलिए अब लबालब भरकर भी कभी तुम अपने भीतर की एक बूँद भी नहीं बरसा पाओगे।'

'यह... यह कैसा दंड है विधाता? एक मेघ को वर्षा के अधिकार से वंचित करना तो उसके अस्तित्व को ही निरर्थक बना देना है।'

'और तुमने जो इस सृष्टि के विधान को ही निरर्थक करने का प्रयास किया, उसका क्या?' निर्विकार था मुखमंडल विधाता का।

'तो क्या इस दंड का कभी अंत ही न होगा?' कातर भाव से पूछा मेघ ने।

'अंतहीन तो केवल परमेश्वर हैं वत्स!' इस बार मुस्कराए विधाता। 'प्रेम ने तुम्हें दंड के बंधन में बांधा है, अब इससे घृणा ही तुम्हें मुक्त करेगी।'

'विचित्र पहेली है आपकी बातों में। मेरी बुद्धि से परे हैं आपकी गूढ़ बातें।' कुछ सिकुड़ गई थीं मेघ की भौहें।

'समय सारी पहेलियाँ सुलझा देगा वत्स!' शांत भाव से कहा विधाता ने।

'किंतु कब और कैसे होगा यह?' व्यग्रता थी मेघ के स्वर में।

'कब और कैसे? यह तो भविष्य की गर्त में है वत्स, इसे भविष्य की गर्त में रहने दो। संयम रखो। और हाँ, अब कोई और प्रश्न न करो। तुम्हारी भटकन इसी क्षण से प्रारंभ होती है।' इतना कहकर अपनी आँखें मूँद ली थीं विधाता ने।

कृशकाय मेघ पुनः महाकाय कृष्ण मेघ का रूप लेकर थके और निराश कदमों से अपनी यात्रा पर निकल पड़ा था।

कितने दिन, मास और वर्ष बीत गए, उसे पता ही नहीं चला। भटकते-भटकते आज मायानगरी के विशाल राजमहल के स्वर्णमंडित शिखर के ठीक ऊपर जाकर ठिठका महाकाय कृष्ण मेघ। उदास दृष्टि से देखा उसने उन छोटे-छोटे मेघों को, जो एक-दूजे से अठखेलियाँ करते बढ़े चले जा रहे थे। उन सबके पास एक लक्ष्य था, और वह था लक्ष्यहीन। उनकी ही तरह वह भी भरा हुआ था लबालब जीवन-रस से। किंतु उसके

लिए यह किसी अविवाहित कन्या के अनचाहे गर्भ की तरह था, जिससे शीघ्रतिशीघ्र मुक्त होना चाहता था वह। और यही मुक्ति उसके जीवन की सबसे बड़ी मृग-मरीचिका बन गई थी।

मायानगरी के विशाल राजमहल के स्वर्णमंडित शिखर से प्रसारित होती स्वर्णकिरणों से चुंधियाई आँखें मलते हुए जब कुछ आगे बढ़ा वह तो उसे गहन वन के मध्य स्थित सन्यासी का आश्रम दिखाई दिया।

'कर्म करने का स्वातंत्र्य मनुष्य के लिए मुक्ति का द्वार भी है और बंधन का कारण भी।' संन्यासी अपने शिष्यों को बता रहे थे।

'वह किस तरह गुरुदेव?' एक शिष्य ने जिज्ञासा की।

'कर्म निरपेक्ष होते हैं किंतु उन्हें करते हुए मनुष्य की जो मनःस्थिति होती है, वही उस कर्म के फल का रूप निर्धारण करती है। आसक्ति और कामना में आकंठ डूबकर किए हुए कर्म मनुष्य को अनंत जन्मों के कालचक्र से बाँध देते हैं, जबकि अनासक्त और सचेत होकर किए हुए कर्म उसे जन्म-जन्मांतर के चक्र से मुक्त करने में सहायक होते हैं।'

'किंतु आसक्ति और अनासक्ति का भेद कैसे होगा?' शिष्य की जिज्ञासा अभी भी शेष थी।

'विवेक सबसे बड़ा साथी है मनुष्य का। ज्ञान के आलोक से संस्कारित विवेक। जो कर्म का चुनाव फल की इच्छा से नहीं करता, परंतु उस कर्म के फल को अनदेखा भी नहीं करता। हंस की तरह वह बंधनयुक्त कर्म रूपी नीर को अलग कर केवल बंधनमुक्त कर्म रूपी क्षीर को ही ग्रहण करता है।'

सच कहते हैं ये संन्यासी। महाकाय कृष्ण मेघ ने सोचा। स्वयं उसके साथ भी तो यही हुआ था। अपने भीतर भरे जीवन-रस को उलीचना उसका कर्म और लक्ष्य दोनों था, मगर यही कर्म विवेकहीनता के कारण आज मुक्ति के स्थान पर उसके बंधन का कारण बन गया है।

इस विचार ने अचानक उसके भीतर वर्षा की स्मृति जगा दी। यहीं पास ही तो है वह स्थान, जहाँ वर्षा रहती है। उसने सोचा। उसके भीतर छुपा प्रेम का सोता पुनः जागृत हो गया। उसके भीतर वर्षा को देखने की एक तीव्र कामना जागी। कहीं यह कामना

उसे पुनः किसी नए बंधन में न डाल दे, उसके मन ने उसे चेतावनी दी। किंतु अब तो बरसने के अधिकार से वंचित है वह, अब किसी संकट की संभावना ही कहाँ शेष रही थी? उसने स्वयं को समझाया।

वन से लौटती गाय की गति जैसे गोशाला के निकट आते ही बढ़ जाती है, वैसे ही तीव्र गति से दौड़ा था महाकाय कृष्ण मेघ। वर्षा जहाँ रहती थी, उस स्थान पर पहुँचा तो चौंका वह। किसी स्लेट पर लिखे शब्दों को पोंछकर जैसे नए शब्द लिख देता है कोई बच्चा, वैसे ही उसकी आँखों के समक्ष बदला हुआ दृश्य था। जहाँ कभी वर्षा की झोंपड़ी थी, उस स्थान पर अब एक भव्य भवन खड़ा हुआ था। श्वेत एवं रक्ताभ पाषाण से निर्मित वह भवन गोलाकार था। उसके प्रवेश द्वार और चारों ओर बने गवाक्षों पर लकड़ी का महीन काम किया हुआ था। प्रवेश द्वार के आगे अद्भुत शिल्पकला से युक्त खंभों पर टिका मंडप था। भवन की छत के एक कोने में कमल पुष्प के आकार का एक छत्र बना हुआ था, जिसके नीचे चंदन का महीन नक्श काम किया हुआ चंदन का एक बड़ा झूला चाँदी की मोटी जंजीरों से बँधा टँगा हुआ था। छत का मध्य भाग खुला हुआ था। मेघ ने उस खुले हुए भाग से भीतर झाँका। उसे एक बड़े-से आँगन के ठीक मध्य एक नन्हा किंतु आकर्षक तुलसी-वृंदावन दिखाई दिया।

कहीं भूल से किसी और स्थान पर तो नहीं आ गया मैं। सोचा महाकाय कृष्ण मेघ ने। भवन के भीतर से आरती की मंद स्वरलहरी आ रही थी। वह तय नहीं कर पाया कि ये स्वर वर्षा के ही हैं या किसी और के। एक तो वर्षा के इस राजमहल-से भवन में होने की संभावना को लेकर उसे संदेह था, दूसरे वर्षा को उसने गाते हुए सुना नहीं था इसलिए भी उसके लिए इस बारे में किसी ठोस निर्णय पर पहुँचना कठिन था। संभ्रम की इसी अवस्था में कुछ पल वहीं ठहरकर वह अभी पलटने ही वाला था कि उसने किसी को हाथ में छोटा-सा कलश लिए तुलसी के पास आते हुए देखा। उसका हृदय एक अनजानी उत्तेजना से भर उठा। वह कौन है, यह देखने के लिए मेघ कुछ और नीचे झुका। आँगन पर पड़ती उसकी छाया से विस्मित होकर तुलसी में जल डाल रही स्त्री ने ऊपर देखा। महाकाय कृष्ण मेघ को देखते ही उसके नेत्रों में परिचय की चमक कौंधी। वह वर्षा ही थी।

उसका गौर वर्ण अब और निखर आया था, उसके विशाल नयनों में एक अलग-सी चमक थी, उसकी उन्नत नासिका अब भी वैसी ही थी। मूल्यवान रेशमी वस्त्रों में उसके व्यक्तित्व का आभिजात्य अब पहले से कई गुना अधिक उभर आया था।

'तुम्हें पुनः देखकर मुझे कितनी प्रसन्नता हो रही है, यह मैं कह नहीं सकती।' कुछ ही क्षणों पश्चात उस भवन की छत पर आई वर्षा ने मेघ से कहा।

'कितना परिवर्तित हो गया है यह स्थान।' महाकाय कृष्ण मेघ के भीतर का आश्चर्य अब जिज्ञासा का रूप ले चुका था।

'और इस परिवर्तन के मूल कारण तुम हो मेघ।' वर्षा ने चहककर कमल-छत्र के नीचे टँगे झूले पर बैठते हुए कहा।

'मैं? वह कैसे?' मेघ की जिज्ञासा में कुछ विस्मय घुल गया।

'कुछ वर्षों पूर्व का आगमन स्मरण है तुम्हें?' वर्षा ने पूछा तो मन ही मन मुस्कराया मेघ। शिशु-सुलभ प्रश्नों पर जिस दृष्टि से एक पिता अपने पुत्र को देखता है, वैसी ही दृष्टि से देखा उसने वर्षा को। कुछ वर्ष पूर्व के उस आगमन ने तो उसका पूरा जीवन ही परिवर्तित कर दिया था। उसे भला वह कैसे विस्मृत कर सकता था?

'तीन वर्षों से सूखा पड़ रहा था इस प्रदेश में। उस वर्ष भी हमारे खेत को छोड़कर इस पूरे प्रदेश में कहीं एक बूँद भी जल नहीं बरसा था। इसकी सूचना जब राजा तक पहुँची तो उन्होंने अपने दरबार के एक मंत्री को यहाँ भेजा था, जाँच के लिए। विडंबना देखो कि जिस दिन वे यहाँ पहुँचे, उसी दिन मेरे पिता चल बसे। मुझे तो अपनी भी कुछ सुध-बुध ना रही थी। उन्होंने ही मुझे सँभाला। यह भवन भी उन्होंने ही बनवाया है। महामोद नाम है उनका।' कहते हुए वर्षा का चेहरा लज्जा से कुछ आरक्त हो गया था।

महाकाय कृष्ण मेघ के भीतर कहीं ईर्ष्या की एक लहर जागी।

'जानते हो, उसके बाद पिछले दो वर्षों से भरपूर वर्षा हुई इस प्रदेश में। हर बार मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करती थी। किंतु तुम उस दौरान कभी दिखाई नहीं दिए।' वर्षा के स्वर में कुछ उलाहना थी।

'मेरा अब वर्षा से कोई संबंध नहीं रहा।' जब कहा महाकाय कृष्ण मेघ ने, तो उसके निहितार्थ समझने के लिए कुछ क्षण मौन रही वर्षा।

'मेघ का वर्षा से संबंध न हो, यह भला कैसे संभव है? जिस प्रकार सूर्य और प्रकाश का अटूट संबंध है, वैसा ही संबंध वर्षा और मेघ का भी तो है।' वर्षा ने कहा।

'कलियुग है यह। इस युग में संबंधों का भविष्य सिद्धांत और भावनाएँ नहीं, परिस्थितियाँ तय करती हैं।' मेघ के स्वर में हताशा की झलक थी।

'कितनी विचित्र बात है यह।' वर्षा के भीतर का विस्मय उसके चेहरे पर भी पसरा हुआ था।

'जब दुर्भाग्य दो पग आगे चलने लगे तो इस संसार में असंभव कुछ नहीं।' दीनता का भाव उभर आया था मेघ के मुख पर।

'किंतु यह बात तो सौभाग्य से जोड़कर भी कही जा सकती है।' इस बार मुस्कराई वर्षा।

'हाँ, ऐसा कहना असत्य न होगा। किंतु अस्तित्व से जुड़े संबंध का बेमानी हो जाना किसी सौभाग्य का लक्षण नहीं हो सकता।'

'तुम्हारी बातों में पीड़ा तो है, किंतु उससे भी गहनतर रहस्य है।' वर्षा के मुख पर उत्सुकता उग आई थी।

'तुम्हारे लिए जो रहस्य है, मेरे लिए वह अभिशाप है।' मेघ ने कहा।

'कैसा अभिशाप मेघ?' वर्षा की उत्सुकता कुछ और गहराई।

'मेघ होकर भी अपने परम कर्तव्य और परम अधिकार वर्षा से वंचित रह जाना अभिशाप नहीं तो और क्या है?' महाकाय कृष्ण मेघ का स्वर कह रहा था कि यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसका कोई उत्तर नहीं है। और यह एक ऐसी पीड़ा है, जिसके अनेक आयाम हैं।

वर्षा के आग्रह पर जब मेघ ने उसे विधाता के शाप की कथा सुनाई तो वर्षा ने उससे वहीं ठहर जाने की जिद पकड़ ली। वह उसे महामोद से भी मिलाना चाहती थी जो हर संध्या उसके पास आया करता था और वे इसी कमल-छत्र के नीचे झूले पर बैठे घंटों बातें किया करते थे। कभी महामोद उसे राजमहल, राजदरबार और राजनीति के विभिन्न प्रसंग, जोड़-तोड़, षड्यंत्रों और घात-प्रतिघात की कथाएँ सुनाता। कभी वह मौन रहता और वर्षा द्वारा बजाए जा रहे सितार की स्वर-लहरियों में खो जाता। इस जानकारी ने महाकाय कृष्ण मेघ के वहाँ न ठहरने के निर्णय को और पक्का कर दिया। किंतु उसने वर्षा को इस बात का वचन दिया कि यथासंभव वह हर दिन उससे मिलने अवश्य आया करेगा।

अगले दिन महाकाय कृष्ण मेघ जानबूझकर सायंकाल वहाँ पहुँचा, किंतु दबे पाँव। दरअसल वह वर्षा के नए प्रेमी महामोद को देखना चाहता था मगर उसके सामने नहीं पड़ना चाहता था। उस समय महामोद उस विशाल कमल-छत्र के नीचे बिछी मखमली गादी पर तकियों के सहारे अधलेटा था, वर्षा उसके पास ही बैठी उसे मोरपंखे से हवा कर रही थी।

'इधर कुछ दिनों से आपके मुख पर मुझे तनाव की रेखाएँ दिखाई देती हैं।' वर्षा का स्वर चिंता से भीगा हुआ था।

'राजनीति का बड़ा विचित्र व्यापार होता है प्रिये।' वर्षा की ओर एक प्रेमल दृष्टि डालकर कहा महामोद ने। 'राजनीति में रहना तलवार की धार पर निरंतर चलते रहने के समान है।'

'जब इतनी दुर्गम्य है राजनीति, तो इसे छोड़ क्यों नहीं देते आप?' बच्चों-सी निश्छलता थी वर्षा के स्वर में।

'राजनीति इतनी दुर्गम्य नहीं, जितना अधिक दुर्दम्य सत्ता का मद होता है। एक बार इसे चखकर फिर छोड़ पाना इंद्र के लिए भी संभव नहीं हुआ, फिर मैं तो एक मनुष्य मात्र हूँ।' मुस्कराया महामोद।

'इस सृष्टि में एक असंभव ही तो संभव नहीं है।' विश्वास से भरकर कहा वर्षा ने।

'किंतु इसकी साधना अत्यंत कठिन है। परमेश्वर की प्राप्ति के लिए की जाने वाली साधना से भी कठिन।' महामोद का अनुभव बोला। 'सत्ता का स्वाद एक बार लग जाए तो फिर इसका नशा जीवन भर सिर चढ़कर ही बोलता है।'

'आप तो प्रबुद्ध हैं। सत्य-असत्य के मध्य अंतर कर सकने का विवेक है आपके भीतर। आपके मामले में यह कैसे संभव है? फिर नशा तो बेसुध करता है, किंतु आपकी बुद्धि और चेतना तो प्रखर है।' कुछ असमंजस में थी वर्षा।

'सत्य-असत्य के मध्य अंतर कर सकने का विवेक होने का अर्थ यह नहीं होता कि आचार-व्यवहार में भी उसका उपयोग किया ही जाता हो। राजनीति विवेक का उपयोग कर सत्य मार्ग पर चलने की सीख नहीं देती, अपितु जिस मार्ग पर चलने से स्वयं का लाभ हो, उसी मार्ग के चयन के लिए प्रेरित करती है। राजनीति का केवल एक ही नियम, एक ही सिद्धांत है, केवल और केवल स्वहित का चिंतन।' पहले

उत्तेजना और फिर निरंतर बोलने की थकान का साया छा गया था महामोद के मुख पर।

'मैं तो समझती थी कि राजनीति में जनहित का चिंतन ही मुख्य और महत्वपूर्ण होता है।' आश्चर्य की एक नन्हीं-सी कोंपल ने सिर बाहर निकाला था वर्षा की स्वर-भूमि से।

'घोषित सिद्धांत आदर्श होते हैं और अघोषित नियम व्यावहारिकता। आदर्श दूसरों के लिए होता है और व्यावहारिकता स्वयं के लिए।' महामोद की बातों में पहेली थी।

'किंतु एक बात अभी भी समझ नहीं पाई हूँ मैं।' वर्षा ने उस पहेली के अस्तित्व को व्यक्त किया।

'वह क्या भला?' उत्सुकता से पूछा महामोद ने।

'आप तो मंत्री हैं इस राज्य के, ऊपर से राजा के इतने विश्वासपात्र हैं। आपके लिए तो अधिक कठिन नहीं होनी चाहिए राजनीति की डगर।'

'तुम्हारी दोनों बातें ठीक हैं वर्षा, किंतु इसके उपरांत भी मेरे लिए सब कुछ आसान नहीं है।' महामोद ने कहा।

'वह कैसे?' वर्षा ने पूछा।

'क्योंकि मंत्री होना मेरा अंतिम लक्ष्य नहीं है। मैं इससे आगे बढ़ना चाहता हूँ। और वर्तमान राजा का विश्वासपात्र होना भी इसमें किसी प्रकार से सहायक नहीं है।'

'रहस्यों से परिपूर्ण गागर से निकलती है संभवतः आपकी हर बात।' अपने आश्चर्य को परिहास का रूप दिया वर्षा ने।

'यह सत्य है कि वर्तमान राजा मुझ पर अत्यधिक विश्वास करते हैं। किंतु सत्ता के समीकरण में आज उनकी स्थिति अत्यंत दुर्बल है। उनके अपने सगे भाई उन्हें सत्ताच्युत करने के षड्यंत्र में लगे हैं। और मैं जानता हूँ कि शीघ्र ही यह षड्यंत्र सफल हो जाएगा।' रहस्य पर से एक आवरण उठाया महामोद ने, किंतु अभी और भी आवरण शेष थे।

'तो आप राजा को इस साजिश के प्रति सचेत क्यों नहीं कर देते?' अगले आवरण के तले झाँकना चाहा वर्षा ने।

'क्योंकि ऐसा करना स्वयं मुझे और मेरे भविष्य को हानि पहुँचाएगा...।' वर्षा के मुख पर पसरे आश्चर्य को देखकर महामोद ने कहना जारी रखा, '...वर्तमान राजा का मंत्री नए राजा के शासन में महामंत्री बन जाएगा। और फिर मेरा अंतिम लक्ष्य अंततः एक दिन स्वयं राजा बनना है। सो आसन्न सत्ता परिवर्तन मुझे अपने लक्ष्य के और निकट ले जाएगा।'

'किंतु नए राजा आपको अपना महामंत्री क्यों बनाएँगे?' आश्चर्य कुछ और गहरा गया था वर्षा का।

'मुझे प्रिय हो तुम, और इस प्रपंच से सर्वथा अछूती भी, इसलिए कहता हूँ। वास्तव में इस सत्ता परिवर्तन हेतु महत्वपूर्ण पदों पर बैठे अधिकारियों को अनुकूल करने के लिए और नए राजा के पक्ष में वातावरण निर्माण के लिए बड़ी मात्रा में धन की आवश्यकता है। राज्य के सेठ-साहूकारों और धनिकों से अपने संबंधों के बल पर मैं ही उस धन की व्यवस्था कर रहा हूँ। मेरी सहायता के बिना यह सत्ता परिवर्तन असंभव है।' महामोद की आँखों में चमक थी।

'हे भगवान! कैसा गहरा षड्यंत्र है। और मुझे विस्मय होता है कि आप इस षड्यंत्र का एक अहम हिस्सा हैं।' वर्षा चकित थी।

खिलखिलाकर हँसा महामोद, 'तुम अब भी नहीं समझी प्रिये। मैं किसी भी षड्यंत्र का हिस्सा नहीं हूँ। वास्तव में निकट भविष्य में होने वाले इस महानाट्य का लेखक और निर्देशक हूँ मैं।'

आश्चर्य का घड़ा मानो किसी ने वर्षा के सिर पर औंधा दिया था, और हाँ, ऊपर छुपकर इस पूरे वार्तालाप को सुन रहे मेघ के सिर पर भी।

'यही तो राजनीति है प्रिये। इसमें दाएँ हाथ को भी यह पता नहीं होता कि बायाँ हाथ क्या करने वाला है।' महामोद ने इस वार्तालाप की पूर्णाहुति की थी।

महामोद की भावी योजनाओं का ज्ञान आशंकाओं के घने कोहरे का रूप धरकर महाकाय कृष्ण मेघ के हृदय प्रदेश पर फैल गया था। मेघ तो प्रेम करना जानता था, दूसरों के लिए अपना सर्वस्व लुटाना जानता था। राजनीति की तीखी तलवार किस प्रकार भावनाओं पर प्रहार करती है, यह उसने पहली बार जाना और अनुभव किया था। वह सोचने लगा कि वर्षा और महामोद के बीच के संबंध का परिणाम भविष्य के

किसी अशुभ से तो नहीं लिपटा हुआ है। किंतु चाहकर भी अपनी यह आशंका वह वर्षा के समक्ष प्रकट नहीं कर पाया था।

यह अजीब संयोग था कि इधर लगभग प्रतिदिन महाकाय कृष्ण मेघ वर्षा से मिलने लगा और उधर मंत्री महामोद की राजनीतिक व्यस्तताओं में इतनी अधिक वृद्धि हो गई कि उसका वर्षा के यहाँ आना कम होने लगा। महामोद का कम आना वर्षा को अधिक खला नहीं तो इसका सबसे बड़ा कारण महाकाय कृष्ण मेघ था। उसने अचानक आकर वर्षा के जीवन की सारी रिक्तताओं को भर दिया था। जब उसका जी चाहता, वह वर्षा के पास आ जाता। वर्षा उस भवन की छत पर स्थित कमल-छत्र के नीचे टँगे झूले पर बैठी उससे भिन्न-भिन्न गाँवों, नगरों की कहानियाँ सुनती।

उधर बड़ी खामोशी से राज्य में सत्ता-परिवर्तन हो गया। महामोद के सहयोग से राजा को बंदी बनाकर उसका अनुज स्वयं राजा बन गया। महामोद को महामंत्री बनाया गया। कल्याणकारी राज्य की अवधारणा न होने के कारण राजा का प्रजा से संबंध केवल नागरिकों और व्यापारियों से कर तथा किसानों से लगान वसूल करने तक ही सीमित रहता था। इसकी वजह से राज्य में हुए सत्तांतर का प्रजा पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसे लेकर राज्यभर में न कहीं उत्तेजना फैली, न विरोध का कोई स्वर उठा। वैसे महामोद ने किसी प्रतिरोध के उठने की दशा में उसे दबाने की व्यवस्था भी की हुई थी, किंतु उसकी कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ी।

वर्षा को लगा था कि महामंत्री बनने के पश्चात महामोद की व्यस्तताएँ कुछ कम हो जाएँगी, किंतु उसमें कमी के स्थान पर वृद्धि ही हुई। अब वह कई-कई दिनों में एक-आध बार कभी वर्षा के पास आता। आता भी तो अत्यधिक क्लांत-श्रांत होकर। बड़ी तेजी से वर्षा और महामोद के मध्य होने वाली बातें कम होती गईं। व्यापक सत्ता और अधिक अधिकार कैसे मुखरता को मौन में परिवर्तित करते हैं, यह वर्षा ने प्रथम बार अनुभव किया। वर्षा के अधिकांश प्रश्नों के उत्तर भी हाँ-हू जैसे एकाक्षरी शब्दों में परिवर्तित होने लगे तो वर्षा को अपनी बातें निरर्थक लगने लगीं। ऐसा भी समय आया कि महामोद के आने पर क्या बात करे, यह प्रश्न वर्षा की सबसे बड़ी समस्या बनने लगा। ऐसे समय में वर्षा सितार के तारों को छेड़ देती, उस सितार के तारों को जो महामोद ने ही कभी उसे भेंट किया था। सितार की स्वर-लहरी जहाँ वर्षा को बातें करने के संकट से बचा लेती, वहीं दूसरी ओर अनजाने ही महामोद की सारी थकन को भी हर लेती।

धीरे-धीरे वर्षा और महामोद के मध्य संवाद का उत्तरदायित्व शब्दों के स्थान पर संकेतों ने सँभाल लिया। महामोद आता, उसके दृष्टि-संकेत पर वर्षा सितार बजाने लगती। अपनी थकन, अपनी चिंताएँ, अपनी उलझन और अपनी कुटिलताएँ भूलकर महामोद कुछ ही क्षणों में निद्रालीन हो जाता।

खलने लगा धीरे-धीरे वर्षा को यह सिलसिला। उसे अनुभव होता मानो वह महामोद की प्रेयसी न होकर दासी हो गई है, जिसे उसके श्रम-परिहार हेतु नियुक्त किया गया है।

'क्या सत्ता रिश्तों के रूप और अर्थ को भी परिवर्तित कर देती है?' एक दिन उसने महाकाय कृष्ण मेघ से पूछा यह प्रश्न।

मेघ तो स्वयं नियति का दास था। वह भला क्या उत्तर देता वर्षा के इस प्रश्न का?

'अब मुझे खलने लगा है यह सिलसिला मेघ।' वर्षा के भीतर विद्रोह खदबदाता। 'बार-बार निश्चय करती हूँ मैं कि अब जब भी महामोद आएँगे तो मैं सितार नहीं बजाऊँगी अपितु प्रश्न करूँगी उनसे कि आखिर यह सिलसिला कब तक चलता रहेगा। किंतु जब भी महामोद आते हैं और संकेत करते हैं, मैं अपने निश्चय पर दृढ़ नहीं रह पाती। एक विवशता अपने भीतर अनुभव करती हूँ मैं।' वर्षा की यही विवशता शनैः-शनैः उसके भीतर आक्रोश की अग्नि को हवा दे रही थी।

और एक दिन अचानक इस सूचना ने वज्रपात किया वर्षा पर कि मायानगरी में इन दिनों महामोद के होने वाले विवाह की चर्चा जोरों पर है।

कई दिनों के बाद पहुँचा था उस दिन महामोद वर्षा के भवन पर। सदा की तरह भवन की छत पर स्थित कमल-छत्र के नीचे बिछे मखमली बिस्तर पर लेट गया वह और संकेत किया वर्षा को सितार बजाने का। नयनों में अग्नि-पुंज लिए आक्रोश से भरी बैठी रही वर्षा।

'यह क्या अभद्रता है?' वर्षा की ओर कुछ रोष से देखते हुए पूछा था महामोद ने।

'अभद्रता वह है, जो आप कर रहे हैं महामंत्री।' वर्षा के स्वर में उत्तेजना थी। यह प्रथम अवसर था जब उसने महामोद को महामंत्री कहकर संबोधित किया था।

'मैंने क्या अभद्रता की?' क्रोध और आश्चर्य का मिश्रण था महामोद के स्वर में।

'मेरे साथ छल किया है आपने। मेरी भावनाओं के साथ खिलवाड़ किया है आपने।' वर्षा का स्वर अब भी तीक्ष्ण था।

'वह किस तरह?' महामोद के समक्ष अब भी स्पष्ट नहीं हो पाया था वर्षा के रोष का कारण।

'नगर भर में इस बात की चर्चा है कि आपका विवाह हो रहा है।' कहते हुए वर्षा के नयन और स्वर दोनों भीग उठे थे।

'राज्य के महामंत्री का विवाह नए राजा की पुत्री के साथ होगा तो चर्चा तो होगी ही। इससे तुम्हें क्या परेशानी है?' महामोद के स्वर में व्यंग्य और आश्चर्य दोनों थे।

'मेरे तन, मन और भावनाओं के साथ इतने वर्षों तक खिलवाड़ करने के पश्चात आप किसी और से विवाह करने जा रहे हैं और मुझसे पूछते हैं कि मुझे क्या परेशानी है?' वर्षा समझ नहीं पा रही थी कि वह क्रोध करे या रोए।

'किसी और से विवाह! तो क्या तुम यह समझ बैठी थी कि मैं तुमसे विवाह करूँगा?' हिकारत से भरा था महामोद का स्वर। और ऐसे ही भाव भी थे उसके मुख पर, '...क्या तुम्हें यह विदित नहीं कि विवाह संबंध सदैव दो समान स्तर वालों के मध्य होता है। मेरे ही टुकड़ों पर पलने वाली तुम, तुमने यह विचार भी कैसे कर लिया कि इस विशाल राज्य का महामंत्री तुमसे विवाह करेगा?'

'और इतने वर्षों का हमारा संबंध?' पीड़ा से भर उठा वर्षा का स्वर।

'कभी किसी पल दया करके दो बोल हँसकर बोल लिए तो उसे रिश्ता समझ बैठी तुम? यह भूल गई कि इस राज्य का महामंत्री हूँ मैं। अतीत में नहीं, वर्तमान में जीता हूँ और भविष्य के स्वप्नों को साकार करने के प्रयास करता हूँ। मेरे लिए जो आज है, वही सत्य है। और आज का सत्य यह है कि मैं इस राज्य के राजा की एकमात्र पुत्री से विवाह करने जा रहा हूँ, और कल इस राज्य का राजा बनूँगा।'

'और मैं?' वर्षा का मन-मस्तिष्क सुन्न हो चुका था।

'तुम जिस तरह आज तक मेरे आश्रय में पलती रही हो उसी तरह आगे भी पलती रहोगी। इससे ज्यादा की अपेक्षा तुम्हें करनी भी नहीं चाहिए। और हाँ, मेरे साथ अपने रिश्ते की बात किसी और के सामने कभी मत करना। अपमान होगा मेरा।' दर्प

से फुफकारते हुए एक के पश्चात एक अनेक शाब्दिक वार किए महामोद ने और क्रोध से पाँव पटकता हुआ चला गया वहाँ से।

वर्षा प्राणविहीन होकर किसी शव की तरह वहीं गिर पड़ी। उसकी सारी संवेदनाएँ ही जैसे नष्ट हो गई थीं।

उधर आकाश में कुछ समय पूर्व आकर ठहरा महाकाय कृष्ण मेघ यह सारा वार्तालाप सुनकर विस्मय और पीड़ा से भर उठा था। क्या इतना नीच होता है मनुष्य? क्या सत्ता इतना गिरा सकती है किसी मनुष्य को कि उसके लिए सारे रिश्ते, सारे संबंध, सारी भावनाएँ अर्थहीन हो जाए?

परिवर्तनशील है यह संसार। फिर यह भ्रम कैसे हो जाता है मनुष्य को कि उसकी सत्ता चिरस्थायी रहेगी। सत्ता के न रहने पर जब मस्तिष्क से उतरेगा यह मद, तब भी क्या इसी दर्प से बातें कर सकेगा यह महामोद? सत्ता से कहीं अधिक स्थायी होते हैं संबंध। क्या इनके महत्व का किंचित भी ज्ञान नहीं रहा महामोद को?

संपूर्ण रात्रि छत पर पड़ी हुई चेतनाविहीन वर्षा को देखकर चिंतन में डूबा उद्विग्न रहा महाकाय कृष्ण मेघ। मेरी वर्षा का, मेरे हृदय की भावनाओं के इस एकमात्र आधार का कितनी निर्लज्जता और निर्ममता से अपमान करता रहा महामोद। और सत्ता के मद में अंधा होकर आगे भी यही करेगा यह पापी। किंतु उसकी दृष्टि से दूर किस तरह ले जाऊँ मैं वर्षा को? और यहाँ रहकर किस तरह इसका अपमान होते देखता रहूँ? और इस तरह की अपमानजनक परिस्थितियों में इसे छोड़कर दूर चले जाना भी तो उचित नहीं है। वर्षा के प्रति उसका प्रेम उसके पाँव की बेड़ियाँ बन गया था।

क्या करूँ, क्या ना करूँ का मंत्र जपता रहा मेघ संपूर्ण रात्रि। बस पौ फटने ही वाली थी कि अनायास गूँजे उसके कानों में विधाता के बोल - प्रेम ने तुम्हें दंड के बंधन में बांधा है, अब उससे घृणा ही तुम्हें मुक्त करेगी।

घृणा! उसने टटोला अपने हृदय को। क्या चरम बिंदु तक पहुँची है महामोद के प्रति उसकी घृणा? हृदय ने तत्क्षण सहमति व्यक्त की। तो क्या करे इस घृणा का वह? क्या रूप और आकार दे इस घृणा को वह? विचार किया उसने और आश्चर्यजनक रूप से इस सत्य का अनुभव किया कि प्रेम और घृणा एक ही भाव के दो रूप भर हैं। गहन तिमिर से भरे हृदय में सहसा प्रकाश की एक किरण कौंधी। प्रेम और घृणा - इन दोनों को ही तिरोहित करना होगा अपने अस्तित्व के साथ। वर्षा के प्रति प्रेम

और महामोद के प्रति घृणा, दोनों से ही मुक्त होना होगा उसे। अब कोई दुविधा नहीं थी। सब कुछ स्वच्छ और स्पष्ट हो गया था। हृदय में उत्तेजना का स्थान शांति ने ले लिया था। और महाकाय कृष्ण मेघ ने पाया कि उसके अस्तित्व के आकार लेने से लेकर अब तक कभी इतनी शांति का अनुभव नहीं किया था उसने। वह चल पड़ा महामंत्री महामोद के निवास की ओर, जिससे सटे विशाल उद्यान में प्रतिदिन प्रातः भ्रमण करता था महामोद।

पता नहीं फिर क्या हुआ। किंतु दोपहर तक संपूर्ण राज्य में यह समाचार दावानल के समान प्रसारित हो गया कि तड़के महामंत्री के उद्यान में भीषण वज्रपात के साथ एक विशाल मेघ फट गया और उसकी चपेट में आकर महामोद की असमय मृत्यु हो गई।

अंततः अपने अस्तित्व को नष्टकर शून्य तो हो गया था महाकाय कृष्ण मेघ, किंतु जैसा कि विधाता ने कहा था, शून्य होकर पूर्ण हो पाया या नहीं वह?
जन्म-जन्मांतरों की उसकी भटकन समाप्त हुई अथवा नहीं? सच कहूँ, मुझे कुछ ज्ञात नहीं। सोचता हूँ, किसी दिन विधाता मिले तो उनसे अवश्य पूछूँगा यह प्रश्न। मुझसे पहले यदि विधाता से आपकी भेंट हो जाए तो आप भी पूछना उनसे यह प्रश्न, और हाँ, उनके उत्तर से मुझे भी अवगत कराना।

https://www.hindiadda.com/shunyant-pur%e1%b9%87amudacyate/